

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180320

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.

H. 81.6

Accession No.

G.H. 1324

Author

B. H. Mad

Title

ଅଥବା
ଅଥବା

This book should be returned on or before the date last marked below.

मधुबाला

सन् १९३४—३५ में

लिखित

बच्चन क अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१—एकांत संगीत

एक सौ गीतों का संग्रह

२—निशा निमंत्रण

एक सौ गीतों का संग्रह

३—मधुकलश

कविताओं का संग्रह

४—मधुशाला

रुबाइयों का संग्रह

५—द्वैयाम की मधुशाला

रुबाइयात उमर द्वैयाम का पद्यानुवाद

६—तेरा हार

प्रारंभिक कविताओं का संग्रह

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के
अंत में देखिए

मधुबाला

वचन

तीसरा संस्करण

सुषमा निकुंज

इलाहाबाद

प्रकाशक
सुषमा-निकुंज
प्रयाग

सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

पहला संस्करण—जनवरी, १९३६
दूसरा संस्करण—नवंबर, १९३८
तीसरा संस्करण—अक्टूबर, १९४०

मूल्य
अजिल्द १।
सजिल्द १।।

मुद्रक
गोपीलाल दीक्षित, दीक्षित प्रेस,
इलाहाबाद

विज्ञापन

आज 'मधुबाला' का तीसरा संस्करण प्रकाशित करते समय हम बड़े आनंद का अनुभव कर रहे हैं। आधुनिक कवियों में बच्चन की सबसे अधिक लोकप्रियता का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि उनकी रचनाओं के बराबर संस्करण के पश्चात् संस्करण जनता में खपते चले जा रहे हैं। बच्चन के प्रेमियों को जानकर हर्ष होगा कि केवल पाँच वर्षों के अंदर हम बच्चन रचित पुस्तकों की लगभग २५००० प्रतियाँ हिंदी प्रेमी जनता के बीच पहुँचा चुके हैं। हिंदी भाषी जनसंख्या देखते हुए यह संख्या नगण्य है। परंतु यदि इसकी तुलना अन्य किसी कवि के इतने समय में रचना-प्रचार से कीजिए तो आपको अचरज हुए बिना न रहेगा।

हमें खेद है कि माँग की अधिकता होने पर भी हम बच्चन की पिछली रचनाओं को अभी तक प्रकाशित नहीं कर सके। इसका कारण बच्चन की प्रकाशित रचनाओं का नवीन संस्करण और नवीन रचनाओं का प्रकाशन है। उनकी दो नई रचनाएँ—'आकुल अंतर' और 'विकल विश्व' हम नए वर्ष के आरंभ में आपको भेंट कर सकेंगे। हो सका तो इसके पश्चात् पिछली रचनाओं में भी हाथ लगाएँगे।

हमें आपके सहयोग का पूर्ण विश्वास है और उसके लिए हम सर्वदा आपके कृतज्ञ हैं।

—प्रकाशक

मधुबाला

मधुबाले,

उस दिन मेरी और अपनी अश्रु-धारा के संगम पर तूने मुझे विश्वास दिखाया था कि तुझे सूनी, झँपेरी और भयावनी मधुशाला से मेरी आर्त्त पुकार सुन पड़ी थी और तू ही मधु को सागर-तट से खीटा खाई थी, जहाँ वह मुझसे ऊबकर पुनः अपने को सिंधु-तरंगों में विखीन कर देने के लिए तुझे साथ लेकर चला गया था ।

मेरी पुकार में भी इतनी शक्ति है—इसी विश्वास से जी सका था । यद्यपि अब जीवन अभिशाप ही है, तो भी अपने जीवन के संबद्ध चिर-सरल मूर्तियों का ध्यानकर कृतज्ञता-ज्ञापन के रूप में अपनी यह कृति दगों के तरङ्ग, नीरव, नम्र आशीर्वाद के साथ तुझे समर्पित करता हूँ । मनाता हूँ, विश्व के जीवन में मधु का और तेरा सदा स्थान रहे !

२२, दिसंबर,

चिर-कृतज्ञ

‘मैं’

सूची

शीर्षक

पृष्ठ

प्रलाप

१—१३

१—मधुबान्ना	...	...	...	१
२—मालिक-मधुशाला	...	.	...	७
३—मधुपायी	...	...	...	१३
४—पथ का गीत	...	...	...	१८
५—सुराही	...	...	...	२२
६—प्याला	...	...	...	२६
७—हाला	...	...	...	३७
८—जीवन-तरुवर	..	...	...	४२
९—प्यास	...	..	...	४७
१०—बुलबुल	...	...	...	५२
११—पाटल-माल	...	...	...	६१
१२— <u>इस पार—उस पार...</u>	...	...	...	६७
१३—पाँच पुकार	...	...	...	७४
१४—पग-ध्वनि	...	...	...	७८
१५— <u>आत्म-परिचय</u>	...	...	...	८४

प्रलाप

उषा प्रति प्रभात में नई साड़ी पहनकर प्राची के प्रांगण में पदार्पण करती है। उसके सस्मित नयनों में रहती है आशा और विश्वास की आभा; आज तो मेरा परिधान संभवतः अवश्य ही पसंद किया जायगा—इसी विचार की छाया-सी। परंतु, क्षण-भर में उसे देखकर कोई जैसे कह देता है, नहीं, यह मुझे पसंद नहीं, कोई दूसरी साड़ी पहनकर आ। और, उषा लौट जाती है, दूसरे दिन एक नूतन पट धारण कर उपस्थित होने की तैयारी करने !

मार्तंड उदय होता है, अपने प्रकाश का भंडार लिए। अपने अगणित करों से दिन-भर अविनि और अंबर को ज्योतिर्मय बनाने का अविरत प्रयत्न करता है और संध्या को कोई प्राची के क्षितिज से बोल उठता है, आज भी पृथ्वी पर न जाने कितने स्थानों पर अंधकार ही छाया रह गया। और, सूर्य चला जाता है लजा-रक्त मुख लेकर, दूसरे दिन और भी अधिक लगन के साथ वसुंधरा का अंचल प्रकाश से भरने की तैयारी करने !

यामिनी आती है। सारी रात गगन-अट्टालिका को दीप-माला से सुसज्जित करती रहती है। एक-एक दीप यही कहता-सा रहता है कि

आज की सजावट तो अवश्य ही प्रियतम को लुभा लेगी । परंतु, प्रभात में प्राची के वातायन से कोई मुस्करा कर कह जाता है, न, आज का शृंगार भी मेरे मन-का न हो सका । अश्रु-विंदुओं से भू के तृण-तृण को भिगोकर यामिनी विदा लेती है, दूसरी रात्रि में गगन प्रासाद के दीपों को किसी अन्य प्रकार सजाने की आयोजना करने !

पृथ्वी अपने अजिर में वसंत मनाती है । तरु-तरु में नव पल्लव लगाती है, लता-लता को कुसुमित करती है । ग्रीष्म आता है, डाल डाल फलों से लद जाती है । वर्षा आती है और पृथ्वी की हरित राशि को धोकर मरकत की छत्रि दे जाती है । शरद की चाँदनी में प्रति पल्लव चमक-चमककर कहता है, क्या पृथ्वी की इस विभा पर भी प्रियतम न रोकेगा ? हेमंत का समीर मंद हास करता हुआ कह जाता है, इस वसंत में भी न जाने कितने तरु पत्रहीन ही रह गए ! इस ग्रीष्म में भी न जाने कितने फल पकने के पूर्व ही गिर गए । इस वर्षा में भी न जाने कितनी भूमि प्यासी ही रह गई और इस शरद में भी न जाने कितने दग्ध स्थल शीतलता से वंचित ही रहे । शिशिर पत्ता-पत्ता तोड़कर गिरा देता है और पृथ्वी फिरसे ऋतुराज का नव स्वप्न देखने लगती है !

और इसी प्रकार मानव भी शीघ्रता के साथ अबोध बचपन की धूलि-क्रीड़ा, सरल बाल-काल की चपलता और उग्र यौवन की उच्छृंखलताओं से अपने जीवन को विकसित करता हुआ शांत वृद्धावस्था की

गंभीरता को प्राप्त होता है और सांसारिक अनुभवों के भार से लदी अपनी पलकों को सहज ही मूँद कर पूछता है 'क्या मेरा यथेष्ट विकास हो चुका है ?' और, उसके हृदय में ही बैठा हुआ कोई अपने नीरव स्वर में कह देता है, 'अभी कहाँ !' इसे सुनते ही उसका शरीर फिर से उन्हीं धूलि-कणों में खेलने लगता है, जहाँ से उसने अपना जीवन प्रारंभ किया था !

प्रति पल परिवर्तन, प्रति प्रहर परिवर्तन, प्रति दिवस परिवर्तन प्रति मास परिवर्तन और प्रति वर्ष और प्रति युग और सदा परिवर्तन !

एक दिन उसे भी बतलाया गया था कि परिवर्तन जीवन का चिह्न है। वह इतना ही जानकर संतुष्ट न हुआ। उसने पूछा 'परिवर्तन जीवन का चिह्न क्यों है ?' उत्तर मिला, 'परिवर्तन जीवन का चिह्न इसलिए है कि जीवन अपूर्ण है। जो पूर्ण है उसे परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। समस्त संसार विविध परिवर्तनों में होता हुआ पूर्णता की ओर जा रहा है।'।

मनुष्य के कानों में इसके बहुत पूर्व कि वह उनको समझ सके, उनकी परीक्षा कर सके और उनका अनुभव कर सके अनेकानेक बातों की भनक डाल दी जाती है। मानवता उन्हें हृदयंगम कर चुकी, उनकी जाँच-पड़ताल कर चुकी और उनसे पूर्ण परिचित हो चुकी। वह अपनी अज्ञान संतान को अपने चिर-प्रयोग, चिर-प्रयत्न और चिर-साधना से प्राप्त सम्पत्ति प्रदान करने के लिए सदा उत्सुक रहती

है। छोटा-सा उदाहरण है। माँ बच्चे से कहती है, आग मत छुओ, उँगलियाँ जल जायँगी। संसार के अगणित बच्चे माँ के इस कथन पर विश्वास कर आग से बच जाते हैं। कितने बच्चे ऐसे भी होते हैं जो बिना आग से अपनी उँगली जलाए यह नहीं सीखते—नहीं सीखना चाहते। वह ऐसा ही बच्चा रहा होगा। प्रश्न यह नहीं है कि कौन बच्चा अच्छा है और कौन बुरा; यद्यपि, यदि उसकी माँ से पूछा जाय तो वह उसके-जैसे बच्चे को बुरा ही कहेगी।

उसने न माना कि जीवन अपूर्ण है। वह विशुद्ध हृदय से यह विश्वास लेकर जीवन-पथ पर बढ़ा कि जीवन पूर्ण है। इस विश्वास के साथ वह कितनी दूर जा सकता था। कितनी पीड़ाओं को सहकर उसने सीखा कि कोमल कुसुमों की डाल काँटों से भरी है और शीतल चंदन के वृक्ष में विषधर सर्प लिपटे हैं। कितने आँसू बहाकर उसने सीखा कि प्रणय के अंदर संघर्ष छिपा है तथा त्याग के पोछे स्वार्थ बैठा है। कितनी आँहें भरकर उसने सीखा कि सत्य, शिव और सुंदर इस विश्व में एक दूसरे से कितनी दूर हैं और वह कितना आश्चर्य-चकित हुआ यह देखकर कि इस संसार में पाप और पुण्य का ही विरोध नहीं! इतना ही होता तो पुण्य कब का पाप के ऊपर विजयी हो गया होता। यहाँ पुण्य का पुण्य से विरोध है। न्याय, न्याय का विद्रोह कर रहा है और सत्य और सत्य में युद्ध हो रहा है, संग्राम हो रहा है—भीषण—अति भीषण !

जल गईं उँगलियाँ, जल गया शरीर और जल गया हृदय । जान लिया उसने कि जग और जीवन अपूर्ण हैं । पर उसने इस अपूर्णता के सामने शीश न झुकाया । मन में यौवन था, तन में यौवन था, रोंम-रोम में यौवन था ! जलते हुए हृदय की ज्वालाओं से भी विश्व के अंधकार में यदि कोई मार्ग दिखाई पड़े तो वह उसकी ओर पाँव बढ़ाने को तैयार था !

उसके दग्ध हृदय के प्रकाश में सोने की मधुशाला चमक उठी, उसने मधु-घट से प्यालों में गिरती मदिरा की 'कल्-कल्, छल्-छल्' सुनी, उसने मधु वितरण करने वाली मधुबाला के पग-पायलों की 'रुन्-भुन्, रुन्-भुन्' सुनी । उसके चारों ओर मधु-गंध गमक उठी और पीनेवालों की चहक गुंजित हुई । उसने अपने चारों ओर कल्पना का विस्तृत संसार बसा लिया । सुषमा ने अनेक मधुबालाओं के रूप में मूर्तिमान होकर उसे घेर लिया । उसके हाथों में जो प्याला आया उस पर न जाने कितने मरकत-पात्र निछावर हो सकते थे । उसकी मदिरा माणिक-राशि की आभा को भी लज्जित करती थी । उसकी अमूर्त सुगंध की तुलना किससे की जाय ? सारा दृश्य था अनुपम, अद्वितीय, अलौकिक ! वह उन्मत्त हो उठा । गान करने लगा—मैंने अपने स्वप्नों से अपने अपूर्ण संसार को पूर्ण कर लिया !

हृदय में कोई कह-कह उठता, जिसका स्वप्न इतना उन्मादक है उसकी सत्ता कितनी उन्मादिनी होगी ! पर वह आगे न बढ़ता था ।

दूर के न जाने कितने स्वप्न निकट पहुँचने पर मृगजल के समान अंतर्धान हो चुके थे । वह अपने को स्वप्न में, भ्रम में रखकर भी अपने मन के संतोष का भूखा था । उसने कहा था, 'साकी, मेरे पास न आना ।' वह तो पीने के स्वप्न से ही तृप्त था, वह तो 'प्यासा ही' रह कर 'मस्त' था । वह जानता था कि उसके स्वप्न संसार की वास्तविकता के साथ सहयोग न कर सकेंगे । इसलिए पाने के अरमान को ही उसने प्राप्ति-सुख समझ रक्खा था । कहता था, 'पा जाता तब, हाय, न इतनी प्यारी लगती मधुशाला' ।

नियति का विधान कुछ और ही था । उसने अपने मन पर संयम रक्खा, पर मधुबाला न रख सकी । आगई उसके पास अपने हाड़-मांस का शरीर लिए, मिट्टी का प्याला लिए और उसमें मदिरा नामधारी द्रव लिए !

हा, हंत ! हृदय पर वज्राघात हुआ ! वह स्वप्न और यह सत्य ! एक पल में सारी वसंत-श्री-शोभा-सुषमा पतझड़ के तरु-कंकालों में विलुप्त हो गई । सोने की अलका मिट्टी में मिल गई, स्वर्ग खँडहर मात्र रह गया, नंदन उजाड़ हो गया । उसका चिर-संचित स्वप्न भग्न हो गया । उसके चिर-असंतुष्ट जीवन का अंतिम आश्रय भी उसे निराश कर गया । उफ़, इतने बड़े संसार में मेरे संतोष के लिए एक भी वस्तु नहीं !—वह चीख पड़ा ।

मधुबाला ने उसको प्यार किया, उसके सिर पर हाथ फेरा, बोली,

‘देखो, यह मधु है । इसी के ध्यान में तुम इतने दिनों तक धुलते रहे हो । लो, इसे पान करो ।’

उसने अपना मुँह फेर लिया ।

मधुबाला फिर-फिर पात्र अधरों तक लाई । आँखों में आँसू भर-भर कर उसने उसकी मनुहार की । उसके ऊपर अपने अंचल की छाया की, पर वह उस पात्र में केवल अपने अश्रु-विंदु ही गिरा सका ।

एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीन दिन बीते ।

वह सोचता—संभव है मेरा भ्रम हो । यदि वह स्वप्न नष्ट हो गया तो संभव है यह भी स्वप्न हो । संभव है सत्य किसी दिन इन्हीं जर्जर स्वप्नों से निकल पड़े । संभव है सीपी के फट जाने पर मुक्ता के दर्शन हों । वह प्रति दिन मदिरालय जाता और प्रति दिन अधरों के नीचे रक्खी मदिरा की प्याली उसकी अश्रु-धार से भरकर उमड़ती । आ गया वह दिन भी ।

वह मदिरालय के सामने पहुँचा । अंधकार था । वह भीतर चला गया । सन्नाटा था । खोज डाला उसने मदिरालय का कोना-कोना । कहाँ गया मधु ! कहाँ गई मधुबाला ! पागलों की भाँति उसने एक-एक खिड़की, एक-एक दरवाजा, एक-एक पर्दा खोज डाला । पर वे कहाँ !

उसे एक पत्र मिला, जिसपर लहू से लिखा हुआ था, हम तुम्हारे योग्य नहीं हो सके, हम अपने को पुनः सागर की तरंगों में विलीन करने जा रहे हैं ! विदा !

जमीन उसके पावों के तले से खिसक गई । यह नहीं हो सकता ।
केवल उपहास है । वह चिल्लाया, मधु रे, मधुबाले !

कोई नहीं बोला ।

हः हः हः हः हः हा ! हः हः हः हः हः हा !

हँस पड़ी मदिरालय की दीवार की एक-एक ईंट । उस हास्य में
कितनी भयंकरता थी, कितना व्यंग था !

उसने फिर पुकारा, 'मधु रे, मधुबाले !'

कोई नहीं बोला ।

बोलीं कौन, मदिरालय की दीवारें, मदिरालय के दरवाजे, 'ओ
कल्पना के पागल !—वे गए !,' 'ओ स्वप्नों के दीवाने !—वे चले
गए !,' 'ओ स्वप्नों के अभिमानी वे दूर गए !'—वे गए—वे गए—वे
गए के स्वर से एक साथ ही जैसे सारा संसार कोलाहल कर उठा !
उस समय उसके हृदय की दशा को न कोई जान सकता है, न कोई
कह सकता है, न कोई समझ सकता है ।

प्रति पल अपने स्वप्न संसार के सामने सत्य संसार को असत्य
समझनेवाला अपने सारे स्वप्नों को पल मात्र में भूल गया । चतु-
र्दिक अग्नि-ज्वाल-माला से घिरे हुये बच्चे के समान वह चीख पड़ा,
मैं अपने मधु को चाहता हूँ, अपनी मधुबाला को चाहता हूँ, वे जैसे
हैं, मैं उन्हें वैसे ही चाहता हूँ !.....पर उत्तर में उसे यही सुन
पड़ा—वे गए, वे गए, वे गए ! चल पड़ा वह भी सागर-तट

की ओर, सोचता —या तो उन्हें लौटाकर लाऊँगा या लौटकर नहीं आऊँगा !

मार्ग में लौटी आ रही थी मधुबाला, मधु को साथ लिए ! लिपट पड़ा वह उनसे और विसुध हो गया !

रात कैसे बीती, उसे शात नहीं । सबेरे वह मधुबाला की गोद में था, उसके अधरों के नीचे मधु था । हृदय की भावाकुलता वह अपने सजल स्वरों में केवल यही कह-कहकर व्यक्त कर सकता था—मैंने कहा, मधु रे ! मधुबाले ! हाय रे, कोई नहीं बोला !.....

और मधुबाला उसके आँसुओं के साथ अपने आँसू एक करके उसे विश्वास दिलाती थी कि बोला कैसे नहीं, मैंने तुम्हारी आवाज सिधु-तट पर सुनी थी और उसे सुनकर ही मैंने वहीं से कहा था कि मैं आ रही हूँ और मधु को लौटा ला रही थी !

सात दिन और सात रात वह अपनी आँखों से अविरत-अविरल अश्रु-धार बहाता रहा । प्रतिज्ञा जैसे कर ली थी कि इन आँखों से बहा दूँगा उन सारे स्वप्नों को, जिनके कारण वह वास्तविकता का मूल्य नहीं समझ सका था । प्यार करने लगा वह मधु को, मधुबाला को—उनके स्वप्निल नहीं वास्तविक रूप को । वे उस रूप में भी कितने प्रिय थे !

पर दुर्भाग्य ! वह वास्तविकता को कितने दिन प्यार कर सका ! उसके असंभव स्वप्न फिर लौट पड़े, उसके आँसुओं से और भी धुलकर, निर्मल होकर, स्पष्ट होकर । उनकी तुलना में वास्तविकता कैसे उडहर

सकती ! मधु तो पृथ्वी पर ही उत्पन्न हुए अंगूरो का रस है । प्याला तो जड़ मृत्तिका का ही अन्य रूप है । मधुबाला तो इसी भूमि की मिट्टी की देह धारण करनेवाली स्त्री है । संसार के लिए भले ही एक में सरसता दूसरे में मादकता और तीसरे में आकर्षण हो, पर उस असंभव स्वप्नों से विक्षिप्त बना दिए गए व्यक्ति को तो मधु से उस समय भी संतोष न होता, यदि उसमें सृष्टि की प्रथम उषा की लाली दी गई होती और उसे नंदन-कानन के पारिजात-पुष्प-समूह की गंध से सुवासित कर दिया गया होता ! उसे मधु का प्याला उस समय भी संतुष्ट न कर सकता, यदि वह नभ-नील-नीलम से निर्मित होता और उसपर नक्षत्रों से भी अधिक द्युतिमान मणियाँ जड़ी हुई होतीं ! उसे मधुबाला उस समय भी अपनी ओर आकृष्ट न कर सकती, यदि वह मधु-कलश-विभूषित सिंधु-कन्या रंभा की प्रतिमूर्ति ही क्यों न होती—अपने उस काल की संपूर्ण अभिनव विभा के साथ, जब वह समुद्र-फेन को फाड़कर सुंदरता, सुकुमारता और उन्मत्तता का संदेश देती हुई ऊपर उठी थी !

उसके प्रथम स्वप्न में सत्ता का विश्वास था । सत्ता की कल्पना, कल्पना की सत्ता से कहीं अधिक वैभव-पूर्ण थी । परन्तु, आज वह जानता है कि उसके स्वप्नों का आदि और अंत उसके ही अंदर है । इस मिथ्या की मनोमुग्धकारी भूल-भुलैया में उसे क्यों डाल दिया गया है ! उसे वह प्यास क्यों दी गई है, जिसकी तृप्ति का साधन कहीं

१०]

नहीं है और जिसका ध्येय उसे केवल प्यासा ही रखना है ? वह काल्पनिक नहीं होना चाहता, वह स्वप्नों का धनी नहीं होना चाहता, वह कवि नहीं होना चाहता । वह चाहता है कि उसके ये सपने उसका पिंड छोड़ दें, जिसमें वह जीवन की वास्तविकता से कुछ अनुराग बढ़ा सके, उनका कुछ मूल्य जान सके, उनका कुछ संमान कर सके और उनका कुछ स्वाद ले सके । वह सतत प्रयत्न कर इन स्वप्नों को दूर हटाता है, उनसे निकल भागने का प्रयत्न करता है, पर उनका ऐंद्रजालिक बंधन उसे कहीं से भी ढीला होता नहीं प्रतीत होता । वह असमर्थ है, लाचार है दुखी है, चिंतित है ।

उसे जिस मदिरा की प्यास है, उसके अभाव में उसकी तृष्णा उसी के रक्त को पी रही है उसकी त्वचा के छिद्र-छिद्र से अपने सूक्ष्म अधरों को लगा कर उसका शोषण कर रही है, उसे निःशेष कर रही है । उसका क्रंदन गान बन कर विश्व में गूँज रहा है । क्रंदन करने की उसे आवश्यकता है । क्रंदन न करे तो क्षण-भर भी जी नहीं सकता । जीवन उसके लिए आनंद नहीं, कर्तव्य है । यदि जीवन का कर्तव्य न होता तो वह मौन ग्रहण कर लेता और वह मौन उसे शीघ्र ही चिर-मौन की शरण में भेज देता ।

दुखिया जीवन के एकांत पथ पर स्वच्छंदता से क्रंदन भी नहीं करने पाता । संसार बार-बार उसके मार्ग में आकर उससे पूछता है, 'क्यों जी, तुम पीते भी हो मदिरा ?' उसे वह क्या उत्तर दे । समझ

सकने की शक्ति हो तो समझ, उसके पास वह मदिरा है, जो उसे ही पीती है !

संसार उसे पूछता है, दाँत निकालकर, सिर तिरछा करके 'हः हः तुमने कितनी पी है ?' मूढ़ को प्रश्न करना भी नहीं आता । नादान, उससे यह पूछ कि तुम्हें कितनी प्यास है, कितनी तृष्णा है ? तेरे उर में कितनी ज्वाला है, कितनी जलन है ?

उदर की ही लुधा को लुधा समझनेवाला संसार गली-गली कहता फिरता है, 'भूखे भजन न होहिं गोपाला ।' झूठ । भूखे रहकर ही भजन होता है, प्यासा ही गान कर सकता है । तृप्ति मौन है । तृष्णा के ही मुख में जिह्वा, कंठ में स्वर और उर में श्वास है । मरु के कण-कण में सजल गान के स्रोत हैं । यदि इस बात को तू समझ सकता है तो तू उसे भी समझ सकेगा ।

उसका तो प्रत्येक स्वर उसके जीवन की प्रतिध्वनि है । और, उसका जीवन कितना सूक्ष्म है, कितना विशाल है ! तू तो उसके 'बावन' अंगुल के भौतिक शरीर के जीवन से भी अनभिज्ञ है, अपरिचित है और वह अपने स्वप्नों के जीवन में अपने 'पग' ही नहीं, अपने कर, चक्षु, कर्ण, नासिका, रसना—सभी को विराट रूप देकर त्रिभुवन के ही नहीं, त्रिकाल के भी ओर-छोर की माप कर आता है ! और, स्वप्नों का जीवन उसके लिये उतना ही सत्य है जितना भौतिक । संभवतः वह अपने स्वप्नों के जीवन को ही अपने जीवन का मुख्य भाग

समझता है और भौतिक जीवन को गौण । देखते नहीं कि उसका एक हाथ उपवन में खिली चमेली का हिम-कण-हार उतार रहा है और दूसरा हाथ भविष्य के तमोमय साम्राज्य में निर्भीकता के साथ प्रविष्ट होकर ऊषा की साड़ी खींच रहा है ? देखते नहीं कि उसका एक कान निर्भरिणी की रागिनी श्रवण कर रहा है और दूसरा कान इंद्र के अखाड़ों में खड़े हुए गंधर्व, किन्नर और अप्सराओं के आलाप का आनंद ले रहा है ? देखते नहीं कि उसकी एक आँख अतीत की दुर्गम सीमाओं का अतिक्रमण कर सृष्टि की प्रथम उषा की लाली से अपनी मदिरा की तुलना कर रही है और दूसरी आँख उस अंधकार को भी देख रही है, जिसके अंदर दिनकर की तमहर किरणें भी किसी समय लुप्त जाएँगी ?

समझ सकेगा उसे कोई ? आज तक संसार ने एक भी कवि को नहीं समझा । उसकी कविता वह भले ही समझने का दावा करे ।

संसार बहुत प्रसन्न हुआ तो कहता है, उसे काव्य-प्रतिभा का वरदान है । यहाँ भी वह भूल करता है । कवित्व दैव का सबसे बड़ा दंड है । न जाने किस महान अपराध के लिए मानव को वह दिया जाता है । वह दूसरे के संसार को ले नहीं सकता, अपने संसार को पा नहीं सकता । विधाता जिसको सब प्रकार वंचित करना चाहता है, उसे ही यह दंड देता है ।

संसार में फिर भी इस अपराधी की इतनी पूछ क्यों है ?

सधुवाला

मधुबाला

(१)

मैं मधुबाला मधुशाला की !

मैं मधुशाला की मधुबाला !

मैं मधुविक्रेता की प्यारी,

मधु के घट मुझपर बलिहारी,

प्यालों की मैं सुखमा सारी,

मेरा रुख देखा करती है

मधु-प्यासे नयनों की माला !

मैं मधुशाला की मधुबाला !

मधुवाला

(२)

इस नीले अंचल की छाया
में जग-ज्वाला का झुलसाया
आकर शीतल करता काया.

मधु-मरहम का मैं लेपन कर

अच्छा करती उर का झाला ।

मैं मधुशाला की मधुवाला !

(३)

मधुघट ले जब करती नर्तन

मेरे नूपुर की छूम-छुनन

में लय होता जग का क्रंदन,

भूमा करता मानव-जीवन

का क्षण-क्षण बनकर मतवाला !

मैं मधुशाला की मधुवाला !

(४)

मैं इस आँगन की आकर्षण,

मधु से सिंचित मेरी चितवन,

मेरी वाणी में मधु के कण,

मदमत्त बनाया मैं करती,

यश लूटा करती मधुशाला !

मैं मधुशाला की मधुवाला !

(५)

था एक समय, थी मधुशाला,
था मिट्टी का घट, था प्याला,
थी किंतु नहीं गाकीवाला.

था बैठा ढाला विक्रेता
दे बंद कपाटों पर ताला ।
मैं मधुशाला की मधुबाला !

(६)

तब इस घर में था तम छाया,
था भय छाया, था भ्रम छाया,
था मातम छाया, गम छाया,

ऊषा का दीप लिए सिर पर
मैं आई करती उजियाला ।
मैं मधुशाला की मधुबाला !

(७)

सोने का मधुशाला चमकी,
मालिक युते से मदिरा दमकी,
मधु-गंध दिशाओं में गमकी,

चल पड़ा लिए कर में प्याला
प्रत्येक सुरा पीनेवाला ।
मैं मधुशाला की मधुबाला !

मधुबाला

(८)

ये मदिरा के मृत-मूक धड़े,
ये मूर्ति-सदृश मधुपात्र खड़े,
ये जड़वत् प्याले भूमि पड़े,
जादू के हाथों से छूकर
मैंने इनमें जीवन डाला !
मैं मधुशाला की मधुबाला !

(९)

मुझको छूकर मधुघट छलके,
प्याले मधु पीने को ललके,
मालिक जागा मलकर पलके,
अँगड़ाई लेकर उठ बैठी
चिर-मुक्त, विमूर्छित मधुशाला !
मैं मधुशाला की मधुबाला !

(१०)

प्यासे आए, मैंने आँका,
वातायन से मैंने भाँका,
पीनेवालों का दल बाँका
उत्कंठित स्वर से बोल उठा,
'कर दे पागल, भर दे प्याला !'
मैं मधुशाला की मधुबाला !

(११)

खुल द्वार गए मदिरालय के,

नारे लगते मेरी जय के.

मिट चिह्न गए चिंता-भय के,

हर ओर मचा है शोर यही,

‘ला ला मदिरा, मदिरा ला-ला !’

मैं मधुशाला की मधुबाला !

(१२)

हर एक वृत्ति का दास यहाँ,

हर एक बात है खास यहाँ,

गिने से बढ़ती प्यास यहाँ.

सौभाग्य मगर मेरा देखो,

देने से बढ़ती है हाला !

मैं मधुशाला की मधुबाला !

(१३)

चाहे जितनी मैं हूँ हाला,

चाहे जितने तू पी प्याला,

चाहे जितना बन मतवाला,

सुन, मेद बतती हूँ अंतिम—

यह शांत नहीं होगी ज्वाला ।

मैं मधुशाला की मधुबाला !

मधुबाला

(१४)

मधु कौन यहाँ पीने आता,
है किसका प्याला से नाता,
जग देख मुझे है मदमाता,
जिसके चिर-तंद्रिल नयनों पर
तनती मैं स्वप्नों का जाला ।
मैं मधुशाला की मधुबाला !

(१५)

यह स्वप्न-विनिर्मित मधुशाला,
यह स्वप्न-रचित मधु का प्याला,
स्वप्निल तृष्णा, स्वप्निल हाला,
स्वप्नों की दुनिया में भूला
फिरता मानव भोलाभाला !
मैं मधुशाला की मधुबाला !

मालिक-मधुशाला

(१)

मैं ही मधुशाला का मालिक,

मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !

मधुपात्र, सुरा, साकी लाया,

प्याली बाँकी-बाँकी लाया,

मदिरालय की भाँकी लाया,

मधुपान करानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

मधुशाला

(२)

आ देखो मेरी मधुशाला,
साकीवालाओं की माला,
मधुमय प्याली, मधुमय प्याला,

मैं इसे सजानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(३)

जब ये मधु पी-पीकर छलके,
देखो इनकी पुलकित पलके
कल कंधों पर चंचल अलके,

मैं देख जिन्हें मतवाला हूँ !

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(४)

इनके मदिराभ अधर देखो,
मूडु कर, कमनीय कमर देखो,
कटि-किकिणि, पद-धूँधर देखो,

मैं मन को हरनेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !

मालिक-मधुशाला

(५)

सब चलीं लिए मधुघट देखो,
भर-भर लहराते पट देखो,
भिलमिल हिलते घूँघट देखो,

मैं चित्त चुरानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(६)

वे देतीं प्याले चूम-चूम,
वे बाँट रहीं मधु घूम-घूम,
वे झुक झुककर वे झूम झूम,

मदमत्त बनानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(७)

पीनेवाले हैं बड़े-बड़े,
देखो पीते कुछ खड़े-खड़े,
कुछ बैठ-बैठ, कुछ पड़े-पड़े,

यह सभा जुटानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(८)

कुछ आते हैं अरमान-भरे,
कुछ जाते हैं एहसान-भरे,
कुछ पाते गर्व गुमान-भरे,

मन सबका रखनेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(९)

अब चिन्ताओं का भार कहाँ,
अब कर्म-कठिन संसार कहाँ,
अब कुसमय का अधिकार कहाँ,

भय-शोक भुलानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(१०)

अब ज्ञान कहाँ, अज्ञान कहाँ,
अब पद-पदवी का ध्यान कहाँ,
अब जाति-वंश अभिमान कहाँ,

समभाव बनानेवाला हूँ !

मैं ही मालिक मधुशाला हूँ !

(११)

हो मस्त जिसे होना, आए,
जितने चाहे साथी लाए,
जितनी जी चाहे पी जाए

‘बस’ कभी न कहनेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ

(१२)

आओ सब के सब साथ चले,
सब एक खाक ही के पुतरे,
क्या ऊँच नीच क्या बुरे-भले

मैं स्वागत करनेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(१३)

आओ, आओ, मत शरमाओ,
क्या सोच रहे हो, बतलाओ ?
है दाम नहीं मत पछताओ,

मैं मुफ्त लुटानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

मधुबाला

(१४)

मैं पूछ-पूछ मदिरा दूँगा,
आशीष-दुआ सबकी लूँगा,
सबको खुशकर मैं खुश हूँगा,

जी खुश करदेनेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

(१५)

कटु जीवन में मधुपान करो,
जग के रोदन में गान करो,
मादकता का सम्मान करो—

यह पाठ पढ़ानेवाला हूँ ।

मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ !

मधुपायी

मधु-प्यास बुझाने आए हम,
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

पग-पायल की झनकार हुई,
पीने को एक पुकार हुई,
बस, हम दीवानों की टोली
चल देने को तैयार हुई,
मदिरालय के दरवाजों पर
आवाज लगाने हम आए ।
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

मधुबाला

हमने छोड़ी कर की माला,
पोथी-पत्रा भू पर डाला,
मंदिर-मस्जिद के वंदीगृह
को तोड़ लिया कर में प्याला.
और दुनिया को आजादी का
संदेश सुनाने हम आए ।
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

क्रोधी मोमिन हमसे भगड़ा,
पंडित ने मंत्रों से जकड़ा,
पर हम थे कब रुकनेवाल,
जो पथ पकड़ा, वह पथ पकड़ा,
पथ-भ्रष्ट जगत को मस्ती की
अब राह बताने हम आए ।
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

छिपकर सब दिन था जग पीता,
पीता न अगर, कैसे जीता ?
जब हम न समझते थे इसको.
वह दिन बीता, वह युग बीता;
सावरी से मिल मदिरा पीने

अब खुले-खुजाने हम आए ।
मधु-प्यास बुझाने हम आए ।

मग में कितने सागर गहरे,
कितने नद-नाले नीर-भरे,
कितने सर, निर्भर, स्रोत मिले,
पर नहीं कहीं पर हम ठहरे;
तेरे लघु प्याले में ही बस
अपनत्व डुबाने हम आए ।
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

है ज्ञात हमें नश्वर जीवन,
नश्वर इस जगती का क्षण-क्षण,
है किंतु अमरता की आशा
करती रहती उर में कंदन;
नश्वरता और अमरता का
अब द्वंद मिटाने हम आए ।
मधु प्यास बुझाने हम आए !

दूरस्थित स्वर्गों की छाया
से विश्व गया है बहलाया;

मधुबाला

हम क्यों उनपर विश्वास करें,
जब देख नहीं कोई आया !
अब तो इस पृथ्वी-तल पर ही
सुख-स्वर्ग बसाने हम आए ।
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

हम लाए हैं केवल हस्ती,
ले, साकी, दे अपनी मस्ती,
जीवन का सौदा खतम करें,
मिल मुक्ति हमें जाए सस्ती,
साकी तेरे मदिरालय को
अब तीर्थ बनाने हम आए ।
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

चिरजीवी हो साकीबाला !
चिर-दिवस जिए मधुका प्याला !
जो मस्त हमें करनेवाली,
आबाद रहे वह मधुशाला !
इतने दिन जो बदनाम रही.
उसका गुण गाने हम आए !
मधु-प्यास बुझाने हम आए !

दी हाथ खुले तूने हाला,

हम सबने भी जी-भर ढाला,

यह तो अनबूझ पहेली है—

क्यों बुझ न सकी अंतर्ज्वाला ?

मदिरालय से पीकर के भी

क्या प्यासे जाने हम आए !

मधु-प्यास बुझाने हम आए !

कल्पना सुरा औ' साकी है,

पीनेवाला एकाकी है,

यह भेद हमें जब शात हुआ,

क्या और समझना बाकी है ?

जो गाँठ न अब तक सुलझी थी,

उसको सुलझाने हम आए ।

मधु-प्यास बुझाने हम आए !

यह सपना भी बस दो पल है,

उर की भावुकता का फल है,

भोली मानवता चेत अरे !

सब धोका है, सारा लुल है !

हम बिना पिए भी पछताते,

पीकर पछताने हम आए !

मधु-प्यास बुझाने हम आए !

पथ का गीत

गुंजित करदो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदाबाद !
सुंदर-सुंदर गीत बनाता,
गाता, सबसे नित्य गवाता,
थकित बटोही का बहला मन
जीवन-पथ की श्रांति मिटाता,
यह मतवाला जिंदाबाद !
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदाबाद !

हम सब मधुशाला जाएँगे,
 आशा है, मदिरा पाएँगे,
 किंतु हलाहल ही यदि होगा
 पीने से क्या धबराएँगे;
 पीनेवाला जिंदाबाद !
 गुंजित करदो पथ का कण-कण
 कह मधुशाला जिंदाबाद !

उफ ! कितने इस पथ पर आते,
 पहुँच मगर कितने कम पाते,
 है हमको अफसोस न इसका,
 इसपर जो मरते तर जाते;
 मरनेवाला जिंदाबाद !
 गुंजित करदो पथ का कण-कण
 कह मधुशाला जिंदाबाद !

यह तो दीवानो का दल है,
 पीना सब का ध्येय अटल है,
प्रात न हो जब तक मधुशाला,
 पड़ सकृती किसके उर कल है ?
 वह मधुशाला जिंदाबाद !

मधुबाला

गुंजित करदो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदाबाद !

झँक रहा वह देखो साकी,
कर में एक सुराही बाँकी,
देख लिया क्या हमको आते ?
धार लगी गिरने मदिरा की,
कह मधुबाला जिंदाबाद !
गुंजित करदो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदाबाद !

अपना-अपना पात्र सँभालो,
ऊँचे अपने हाथ उठालो,
सात बलाएँ ले मदिरा की,
प्याले अपने होठ लगा लो,
मधु का प्याला जिंदाबाद !
गुंजित करदो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदाबाद !

प्याले में क्या आई हाला ?
नहीं, नहीं उतरी मधुबाला !

पीकर कैसे यह छवि खो दूँ—
सोच रहा हर पीनेवाला ।
मादक हाला जिंदाबाद !
गुंजित करदो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदाबाद !

जिसमें झलक रही मधुशाला,
जिसमें प्रतिबिंबित मधुवाला,
कौन सकेगा पी उस मधु को
कितनी ही हो अंतर्ज्वाला ?
उर की ज्वाला जिंदाबाद !
गुंजित कर दो पथ का कण-कण
कह मधुशाला जिंदाबाद !

सुराही

मैं एक सुराही हाला की !
मैं एक सुराही मदिरा की !
मदिरालय हैं मंदिर मेरे,
मदिरा पीनेवाले चेरे,
पंडे-से मधु-विक्रेता को,
जो निशि-दिन रहते हैं घेरे;
है देव-दासियों-सी शोभा
मधुबालाओं की माला की ।
मैं एक सुराही हाला की !

कोयल-बुलबुल का तान यहाँ,
 घड़ियाली और अजान यहाँ,
 जिसको सुनकर खिंच आता है
 पीनेवालों का ध्यान यहाँ,
 तुलसी-बरबो-सी पावनता
 है अंगूरों की लतिका की।
 मैं एक सुराही मदिरा की !

सब आर्य प्रवर आ सकते हैं,
 सब आर्येतर आ सकते हैं,
 इस मानवता के मंदिर में
 सब नारी-नर आ सकते हैं;
 केवल प्रवेश उसका निषिद्ध
 जिसमें मधु-प्यास नहीं बाकी।
 मैं एक सुराही हाला की !

सबका समान सम्मान यहाँ,
 सबको समान वरदान यहाँ,
 मैं शंकर-सी औदर दानी,
 है मुक्ति बड़ी आसान यहाँ,
 देरी है केवल फिरने की

मधुबाला

सबपर मेरी चितवन बाँकी ।

मैं एक सुराही मदिरा की !

इस मंदिर में पूजन मेरा,

अभिवादन-अभिनंदन मेरा,

निज भाग्य सराहा करते सब

पाकर मादक दर्शन मेरा,

जिस तप से यह पदवी पाई

मैंने, करलो उसकी भाँकी ।

मैं एक सुराही हाला की !

मैं कुंभकार की चाक चढ़ी,

फिर मेरे तन पर बेलि कढ़ीं,

तब गई चिता पर मैं रखी,

हर ओर अग्नि की ज्वाल बढ़ी,

जल चिता गई हो राख-राख,

मैं मिट्टी किटु रही बाकी ।

मैं एक सुराही मदिरा की !

मैं मृत्यु विजय करके आई,

मैंने दैवी महिमा पाई,

मानव के नीरस जीवन में
 मैं अमृत-सा मधुरस लाई,
 इस गुण के कारण ही तो मैं
 बन प्राण गई मधुशाला की ।
 मैं एक सुराही हाला की !

मैं मधु से नहलाई जाती,
 फिर प्यालों की माला पाता,
 तब मेरे चारों ओर खड़ी
 होकर मधु-बालाएँ गार्ती;
 इस भाँति गई है की पूजा
 जगती-तल पर किस प्रतिमा की ?
 मैं एक सुराही मदिरा की !

मैं मिट्टी की र्था लाल हुई,
 मधु पीकर और निहाल हुई,
 जब चली मुझे ले मधुवाला,
 'छल-छल' करके वाचाल हुई,
 जिसको सुनकर पंडित-मुल्ले
 भूले सब अपनी चालाकी ।
 मैं एक सुराही मदिरा की !

मधुबाला

अब इनकी मिन्नत कौन करे ?

इनके शार्पों से कौन डरे ?

जब स्वर्ग लिए मैं फिरती हूँ,

तब कौन क्यामद तक ठहरे ?

जो प्राप्य अभी, उसके हित कल

की राह किसी ने कब ताकी ?

मैं एक सुराही मदिरा की !

मैं मधुबाला के कंधों पर

उपदेश यही देती चढ़कर—

‘अपने जीवन के क्षण-क्षण को,

लो मेरी मादकता से भर;

यह मिलना-जुलना क्षण-भर का,

फिर जाना सबको एकाकी !’

मैं एक सुराही हाला की !

लघु मानव का कितना जीवन !

फिर क्यों उसपर इतना बंधन ?

यदि मदिरा का ही अभिलाषी,

पी सकता कुछ गिनती के कण !

चुल्लू भर में गल सकता है
उसके तन का जामा खाकी ।
मैं एक सुराही मदिरा की !

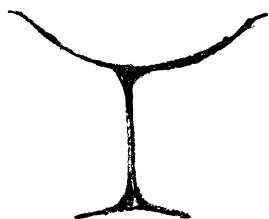
मैं हूँ प्यालों में जम जाती,
मधु के वितरण में रम जाती,
भरती अगणित मुख में मदिरा,
अपनी निधि, पर, कब कम पाती ?
मैं घूम जिधर पड़ती, उठती
है गूँज उधर ध्वनि ला-ला की ।
मैं एक सुराही हाला की !

औरों के हित मेरी हस्ती,
औरों के हित मेरी मस्ती,
मैं पीती सिंचित करने को
इन प्यासे प्यालों की बस्ती,
आनंद उठाते ये, अपयश
की भागी बनती मैं, साकी ।
मैं एक सुराही मदिरा की !

मधुबाला

उन्मत्त बनाना खेल नहीं,
मधु से भी बुझती प्यास कहीं !
उर तापों से पिघला मेरा,
यह नहीं सुरा की धार बही !
उर के आसव से ही होती
है शांति हृदय की ज्वाला की ।
मैं एक सुराही हाला की !

तुमने समझा मधुपान किया !
मैंने निज रक्ते प्रदान किया !
उर क्रंदन करता था मेरा,
पर मुख से मैंने गान किया !
मैंने पीड़ा को रूप दिया,
जग समझा मैंने कविता की !
मैं एक सुराही मदिरा की !



प्याला

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !
कल काल-रात्रि के अंधकार
में थी मेरी सत्ता विलीन,
इस मूर्तिमान जग में महान
था मैं विलुप्त कल रूप-हीन,
कल मादकता की भरी नींद
थी जड़ता से ले रही होड़,
किन सरस करों का परस आज
करता जीवन जाग्रत नवीन ?
मिट्टी से मधु का पात्र बनूँ—
किस कुंभकार का यह निश्चय ?
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

(२)

भ्रम भूमि रही थी जन्म-काल,
या भ्रमित हो रहा आसमान,
उस कलावान का कुछ रहस्य
होता फिर कैसे भासमान '

जब खुली आँख, तब हुआ ज्ञात,
थिर है सब मेरे आस-पास,
समझा था सबको भ्रमित, किंतु
भ्रम स्वयं रहा था मैं अज्ञान;
भ्रम से ही जो उत्पन्न हुआ,
क्या ज्ञान करेगा वह संचय !
मिट्टी का तन मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

(३)

जो रस लेकर आया भूपर,
जीवन-आतप ले गया छीन,
खो गया पूर्व गुण, रंग, रूप
हो जग की ज्वाला के अधीन,
मैं चिन्ताया, 'क्यों ले मेरी
मृदुता करतीं मुझको कठोर ?

लपटें बोलीं, 'चुप बजा-ढोंक
लेगी तुझको जगती प्रवीण ।'

यह लो, मीना-बाजार लगा,
होता है मेरा क्रय-विक्रय ।

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

(४)

मुझको न सके ले धन-कुवेर
दिखलाकर अपना ठाट-बाट,
मुझको न सके ले नृपति मोल
दे माल-खजाना, राज-पाट,

अमरों ने अमृत दिखलाया,
दिखलाया अपना अमर-लोक,
ठुकराया मैंने दोनों को
रखकर अपना उन्नत ललाट,

बिक, मगर, गया मैं मोल बिना,
जब आया मानव सरस-हृदय !

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

मधुबाला

(५)

बस एक बार पूछा जाता
यदि अमृत से पड़ता पाला,
यदि पात्र हलाहल का बनता,
बस एक बार जाता ढाला,
चिर जीवन औ' चिर मृत्यु जहाँ
लघु जीवन की चिर प्यास कहाँ ?

फिर-फिर जो होठों तक जाता
वह तो बस मदिरा का प्याला,
मेरा घर है अरमानों से
परिपूर्ण जगत का मदिरालय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

(६)

मैं सखी सुराही का साथी,
सहचर मधुबाला का ललाम,
अपने मानस की मस्ती से
उफनाया करता आठ याम,
कल कूर काल के गालों में
जाना होगा—इस कारण ही

कुछ और बढ़ा दी है मैंने
अपने जीवन की धूमधाम;
इन मेरी उल्टी चालों पर
संसार खड़ा करता विस्मय ।

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

(७)

मेरे पथ में आ-आकरके
तू पूछ रहा है बार-बार,
'क्यों तू दुनिया के लोगों में
करता है मदिरा का प्रचार ?'

मैं वाद-विवाद करूँ तुझसे,
अवकाश कहाँ इतना मुझको ?

'आनंद करो'—यह व्यंग-भरी
है किसी दग्ध-उर की पुकार;

कुछ आग बुझाने को पीते
ये भी, कर मत इनपर संशय !

मिट्टी का तन. मस्ती का मन
क्षण-भर जीवन —मेरा परिचय !

(८)

मैं देख चुका जा मस्जिद में
 झुक-झुक मोमिन पढ़ते नमाज,
 पर अपनी इस मधुशाला में
 पीता दीवानों का समाज,
 वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म
 कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत ?
 कब कंचन मस्जिद पर बरसा ?
 कब मदिरालय पर गिरी गाज ?

यह चिर-अनादि से प्रश्न उठा,
 मैं आज करूँगा क्या निर्णय !

मिट्टी का तन, मस्ती का मन
 क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

(९)

सुनकर आया हूँ मंदिर में
 रटते हरि-जन थे राम राम,
 पर अपनी इस मधुशाला में
 जपते मतवाले जाम-जाम,
 पंडित मदिरालय से रूठा,
 मैं कैसे मंदिर से रूठूँ,

मैं फर्क बाहरी क्या देखूँ,
मुझको मस्ती से महज़ काम !

भय-भ्रांति-भरे जग में दोनों
मन को बहलाने के अभिनय !

मिट्टी का तन. मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

(१०)

संस्मृति की नाटकशाला में
है पड़ा तुझे बनना शानी,
है पड़ा मुझे बनना प्याला,
होना मदिरा का अभिमानी,

संघर्ष यहाँ किसका किससे,
यह तो सब खेल-तमाशा है ।

वह देख, यवनिका गिरती है !
समझा कुछ अपनी नादानी ?

छिप जायेंगे हम दोनों ही
लेकर अपने-अपने आशय !

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय !

पल में मृत पीनेवाले के
कर से गिर भू पर आऊँगा,
था निर्मित मैं जिस मिट्टी से
उस मिट्टी में मिल जाऊँगा;

अधिकार नहीं जिन बातों पर,
उन बातों की चिंता करके
अब तक जग ने क्या पाया है ?
मैं कर चर्चा क्या पाऊँगा ?

सुभको अपना ही जन्म-निधन
है सृष्टि प्रथम, है अर्तिम लय !

मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण-भर जीवन—मेरा परिचय

हाला

उल्लास-चपल उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल—मेरा परिचय !

(१)

जग ने ऊपर की आँखों से
देखा मुझको बस लाल-लाल,
कह डाला मुझको जल्दी-से
द्रव माणिक या पिघला प्रवाल,

जिसको साकी के अधरों ने
चुंबित करके स्वादिष्ट किया,
कुछ मनमौजी मजनों जिसको
ले-ले प्यालों में रहे ढाल;

मेरे बारे में है फैला
दुनिया में कितना भ्रम-संशय !
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल —मेरा परिचय !

(२)

वह भ्रांत महा जिसने समझा
मेरा घर था जलधर अथाह,
जिसकी हिलोर में देवों ने
पहचाना मेरा लघु प्रवाह;
अंशावतार वह था मेरा,
मेरा तो सच्चा रूप और;
विश्वास अंगर मुझपर, मानो—
मेरा दो कण वह महोत्साह,
जो सुरासुरों ने उर में धर
मथ डाला वारिधि-वृहत्-हृदय !
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल—मेरा परिचय !

(३)

मेरी मादकता से ही तो
मानव सब सुख-दुख सका भेल,
कर सकी मानवों की पृथ्वी
शशि-रवि सुदूर से हेल-मेल,
मेरी मस्ती से रहे नाच
ग्रह गण, करता है गगन गान,

वह महोन्माद मैं ही जिससे
यह सृष्टि-प्रलय का खेल खेल,

दुस्सह चिर जीवन सह सकता
वह चिर एकाकी लीलामय !
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल—मेरा परिचय !

(४)

अवतरित रूप में भी तो मैं
इतनी महान, इतनी विशाल !
मेरी दो नन्हीं बूँदों ने
रँग दिया उषा का चीर लाल !

संध्या की चर्चा क्या वह तो
उसके दूकूल का एक छोर,
जिसकी छाया से ही रंजित
पाटल-कुटुंब का मृदुल गाल !

कर नहीं मुझे सकता बंदी
दर-दीवारों में मदिरालय !
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल—मेरा परिचय !

मधुबाला

(५)

अवतीर्ण रूप में भी तो है
मेरा इतना सुरभित शरीर,
दो साँस बहा देती मेरी
जग-पतझड़ में मधुश्रुतु समीर.

जो पिक-प्राणों में कर प्रवेश
तनता नभ में स्वर का वितान,
लाता कमलों की महफिल में
नर्तन करने को भ्रमर-भीर !

मधुबाला के पग-पायल क्या
पाएँगे मेरे मन पर जय !
उल्लास चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल—मेरा परिचय

(६)

लवलेश लास लेकर मेरा
भरना भूमा करता गिरि पर,
सर हिल्लोलित होता रह-रह,
सरि बढ़ती लहरा-लहराकर,

मेरी चंचलता की करता
रहता है सिंधु नकल असफल,

अज्ञानी को यह ज्ञात नहीं,
मैं भर सकती कितने सागर !

कर पाएँगे प्यासे मेरा
कितना इन प्यालों में संचय !
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल मेरा परिचय !

(७)

हूँ आज प्रवाहित मैं ऐसे.
जैसे कवि के हृदयोद्गार !
तुम रोक नहीं सकते मुझको,
कर नहीं सकोगे मुझे पार ।

यह अपनी कागज की नावें
तट पर बाँधो, आगे न बढ़ो,
ये तुम्हें डुबा देंगी गलकर
हे श्वेत-केश-धर कर्णधार !

बह सकता जो मेरी गति से
पा सकता वह मेरा आश्रय !
उल्लास-चपल उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल— मेरा परिचय !

(८)

उद्दाम तरंगों से अपनी
मस्जिद - गिरजाघर - देवालय
मैं तोड़ गिरा दूँगी पल में—
मानव के वंदी-गृह निश्चय !

जो कूल, किनारे, तट करते
संकुचित मनुज के जीवन को,
मैं काट सबों को डालूँगी
किसका डर मुझको ? मैं निर्भय !

मैं ढहा-बहा दूँगी क्षण में
पाखंडों के गुरु गढ़ दुर्जय ।
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल
प्रतिपल पागल -- मेरा परिचय !

(९)

फिर मैं नभ-गुंबद के नीचे
नव-निर्मल द्वीप बनाऊँगी,
जिसपर हिल-मिलकर बसने को
संपूर्ण जगत को लाऊँगी,

उन्मुक्त वायुमंडल में अब
आदर्श बनेगी मधुशाला !

प्रिय प्रकृति-परी के हाथों से
 ऐसा मधुपान कराऊँगी,
 चिर-जरा-जीर्ण मानव फिर से
 पाएगा नूतन यौवन-वय !
 उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
 प्रतिपल पागल--मेरा परिचय !

(१०)

रे वक्र भ्रुओंवाले योगी !
 दिखला मत मुझको वह मरुथल,
 जिसमें जाकर खो जाएगी
 मेरी द्रुत गति. मेरी ध्वनि कल ।
 है ठीक अगर तेरा कहना,
 मैं और चलूँगी इठलाकर !

संदेहों में क्यों व्यर्थ पड़ूँ ?
 मेरा तो है विश्वास अटल—

मैं जिस जड़ मरु में पहुँचूँगी,
 कर दूँगी उसको जीवन-मय !
 उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
 प्रतिपल पागल---मेरा परिचय !

लघुतम गुरुतम से संयोजित--

यद्द जान, मुझे जीवन प्यारा

परमाणु कैपा जब करता है,

हिल उठता नभ-मंडल सारा !

यदि एक वस्तु भी सदा रही,

तो सदा रहेगी वस्तु सभी !

त्रैलोक्य बिना जलहीन हुए

सकती न सूख कोई धारा !

सब सृष्टि नष्ट हो जाएगी,

हो जाएगा जब मेरा क्षय !

उल्लास चपल, उन्माद तरल,

प्रतिपल पागल - मेरा परिचय !

जीवन-तरुवर

(१)

भावुकता की हरियाली में
हरे रहो, जीवन के तरुवर !
सरस कल्पना के सुमनों से
भरे रहो, जीवन के तरुवर !

(२)

गान-विहंगों के शरणास्थल
बने रहो, जीवन के तरुवर !
रसिक पथिक पर छाया के हित
घने रहो, जीवन के तरुवर !

(३)

विपदाओं की अंधवायु में
तने रहो, जीवन के तरुवर !
अपने सौरभ की मस्ती में,
सने रहो, जीवन के तरुवर !

प्यास

तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय !

(१)

तू अगम सिंधु की राशि लिए,
मैं अरु असीम की प्यास लिए,
मैं चिर-विचलित संदेहों से,
तू शांत अटल विश्वास लिए,
तेरी मुझको आवश्यकता,
आवश्यकता तुझको मेरी,
मैं जीवन का उच्छ्वास लिए,
तू जीवन का उल्लास लिए,
तुझसे मिल पूर्ण चला वनने,
मेरा बस इतना ही परिचय ।
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय !

(२)

क्या कहती ? 'दुनिया को देखो',
 दुनिया रोती है, रोने दो,
 मैं भी रोया, रोना अच्छा,
 आँसू से आँखें धोने दो,
 रोनेवाला ही समझेगा
 कुछ मर्म हमारी मस्ती का,
 सुन, अश्रु-भरी आँखें कहती—
 यह राग-रंग भी होने दो;
 रोदन-गायन दोनों के स्वर
 से सधती जग-वीणा की लय ।
 तेरा-मेरा संबंध यही—
 तू मधुमय औ' मैं तृपित-हृदय !

(३)

क्या कहती ? 'दुनिया को देखो'
 दुनिया देती लानत मुझको,
 है कहती फिरती गली-गली,
 मदिरा पीने की लत मुझको,
 दुनिया तो मुझसे है रूठी;
 है तुली हुई बंद कहने पर,

गंगाजल जब मैं था पीता ;
कब दी उसने इज्जत मुझको ?

बदनाम रहे हो मंदिर हैं,
यह तो फिर ठहरा मदिरालय !
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय !

(४)

बादल वारिधि से मधु पीकर
नभ के आँगन में मँडराते,
चपला-साकी को संग लिए,
नर्तन करते. गायन गाते.

कोई न बुरा कहता उनको,
किस्मत के वे कितने अच्छे !

लेकिन मुझपर कल के शानी
भी आँखें अपनी दिखलाते,

कर पाया हूँ इन अधरो से
मदिरा पाने की सिर्फ विनय !
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय !

(५)

रवि की प्यासी किरणें भू तक
लाखों योजन चलकर आतीं,
सर, निर्भर, सरिता, सागर के
जल से निज प्यास बुझा जातीं,

युग-युग से जग यह देख रहा,
उँगली न उठाई पर उसने,
चर्चा घर-घर में फैल गई
मिलते हम-तुम, ओ मदमाती !

मिलना हम दोनों का भी तो
है अन्य किसी का ही निर्णय ।
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय ओ' मैं तृप्ति-हृदय !

(६)

अस्तित्व न था जब तृष्णा का,
मदिरालय था यह विशृंखल,
विक्रेता था मृतप्राय पड़ा,
चंचल साकी भी थे अविचल,

कुछ पता नहीं था प्यासों का,
क्या जिक्र घटों का, प्यालों का,

इस परी तृषा के आते ही
मच गई पलों में चहल-पहल,

हैं रंग मंच तृष्णा का ही,
जिसपर यह संसृति का अभिनय
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय !

(७)

पृथ्वी में जिसने प्यास भरी,
बादल में उसने नीर भरा,
तट-अधरों को नीचें रक्खा
है प्याला अंबुधि का गहरा,

वह गुरु-महान की तृष्णा में
छोटों की प्यास नहीं भूला,

भौरों की प्यास बुझाने को
सर में पद्मों का पात्र धरा,

छोटे-से-छोटे तृण का ही
रख ध्यान बना नमहिम-कण मय !

तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित हृदय ?

(८)

सिंचित हो नभ की मदिरा से
 यह धरा हरित हो लहराती,
 तट गिर-गिर पड़ते सागर में,
 अलि-अवली रस पी-पी गाती,
 जिस-जिस उर में दी व्यास गई,
 दी तृप्ति गई उस-उस उर में,
 मानव को ही अभिशाप मिला,
 'पीकर भी दग्ध रहे छाती !;
 किन अपराधों के बदले में
 मानव के प्रति यह क्रूर अनय !
 तेरा-मेरा संबंध यही—
 तू मधुमय औ' मैं तृप्ति-हृदय !

(९)

यह 'क्रूर अनय' सह सकता है
 केवल इस बल पर मन मेरा,
 इसके कारण ही तो, सुंदरि !
 सत्संग मिला मुझको तेरा ।
 मेरे दामन, तेरे आंचल
 की गाँठ लगादी तृष्णा ने.

उर-कुंड-हवन के ओर सभी
आ, दें मिलकर मंगल फेरा ।

कर कौन अलग सकता हमको
हो जानें पर विधिवत् परिणय ?
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय !

(१०)

जब मानव का अपनी तृष्णा
से है इतना चिर-हृद नाता,
तब मैं मदिरा का अभिलाषी
क्यों जग में दोषी कहलाता ?

मेरी तृष्णा तो मूर्तिमती
परिपूर्ण विश्व की आकांक्षा,
मानव अशांति, मानव स्वप्नों
के गायन ही तो हूँ गाता,

गाऊँगा जब तक एक नहीं
होकर मिलते संघर्ष-प्रणय !
तेरा-मेरा संबंध यही—
तू मधुमय औ' मैं तृषित-हृदय

मैं अर्थ बताता तृष्णा का,
 क्षण बीत रहे हैं जीवन के,
 किस-किसका दूर करूँगा मैं.
 संदेह यहाँ है जन-जन के,

भर दे प्याला, भूले दुनिया,
 भूले अपूर्णता दुनिया की,
 मतवालों ने कब काम किए
 जग में रहकर जग के मन के ?

वह मादकता ही क्या जिसमें
 बाकी रह जाए जग का भय !
 तेरा-मेरा संबंध यही—
 तू मधुमय औ' मैं तृषित हृदय !

बुलबुल

सुरा पी, मद पी, कर मधुपान,
रही बुलबुल डालों पर बोल !

(१)

लिए मादकता का संदेश
फिरा मैं कबसे जग के बीच,
कहीं पर कहलाया विक्षिप्त.
कहीं पर कहलाया मैं नीच ।

सुरीले कंठों का अपमान
जगत मे कर सकता है कौन ?
स्वयं, लो. प्रकृति उठी है बोल
बिदाकर अपना चिर व्रत मौन !

अरे, मिट्टी के पुतलो ! आज,
सुनो अपने कानों को खोल.
सुरा पी, मद पी, कर मधुपान,
रही बुलबुल डालों पर बोल !

मधुबाला

(२)

यही श्यामल नभ का संदेश,
रहा जो तारों के सग भ्रूम,
यही उज्ज्वल शशि का संदेश,
रहा जो भू के कण-कण चूम,

यही मलयानिल का संदेश,
रहे जिससे पल्लव-दल डोल,
यही कलि-कुसुमों का संदेश,
रहे जो गाँठ सुरभि की खोल,

यही ले-ले उठती संदेश,
सलिल की सहज हिलोरे लोल,
प्रकृति की प्रतिनिधि बनकर आज
रही बुलबुल डालों पर बोल !

(३)

अरुण हाला से प्याला पूर्ण,
ललकता उत्सुकता के साथ
निकट आया है तेरे आज
सुकुमल मधुबाला के हाथ,

सुरा-सुषमा का पा यह योग
नहीं यदि पीने का अरमान,

भले तू कह अपने को भक्त,
कहूँगा मैं तुझको पाषाण !

हमें लघु मानव को क्या लाज,
गए मुनि-देवों के मन डोल !
सरसता से संयम को जीत
रही बुलबुल डालों पर बोल !

(४)

कहीं दुर्जय देवों का कोप—
कहीं तूफान कहीं भूचाल,
कहीं पर प्रलय-कारिणी बाढ़,
कहीं पर सर्व—भक्षणी ज्वाल,

कहीं मानव के अत्याचार,
कही दीनों की दैन्य पुकार,
कहीं दुःश्चिताओं के भार
दबा क्रंदन करता संसार !

करें, आओ, मिल हम दो चार
जगत-कोलाहल में कल्लोल !
दुखों से पागल होकर, आज
रही बुलबुल डालों पर बोल !

(५)

विभाजित करती मानव जाति
धरा पर देशों की दीवार,
जरा ऊपर तो उठकर देख,
वही जीवन है इस-उस पार ।

धृणा का देते हैं उपदेश
यहाँ धर्मों के ठेकेदार,
खुला है सब के हित सब काल
हमारी मधुशाला का द्वार !

करें, आओ, विस्मृत वे भेद,
रहे जो जीवन में विष घोल,
क्रांति की जिह्वा बनकर आज
रही बुलबुल डालों पर बोल !

(६)

एक क्षण पात-पात से प्रेम
एक क्षण डाल-डाल पर खेल
एक क्षण फूल-फूल से स्नेह,
एक क्षण विहग-विहग से मेल;

अभी है जिस क्षण का अस्तित्व,
दूसरे क्षण बस उसकी याद,

याद करनेवाला यदि शेष;
नहीं क्या संभव क्षण भर बाद ।

उड़ें अज्ञात दिशा की ओर
पखेरू प्राणों के पर खोल ?
सजग करती जगती को आज
रही बुलबुल डालों पर बोल !

(७)

हमारा अमर सुखों का स्वप्न,
जगत का, पर, विपरीत विधान,
हमारी इच्छा के प्रतिकूल
पड़ा है आ हमपर अनजान ।

भुकाकर इसके आगे शीश
नहीं मानव ने मानी हार !
मिट सकने में यदि असमर्थ,
भुला सकते हम यह संसार !

हमारी लाचारी की एक
सुरा ही औषधि है अनमोल;
लिए निज वाणी में विद्रोह
रही बुलबुल डालों पर बोल !

(८)

जिन्हें-जग-जीवन से संतोष,

उन्हें क्यों भाए इसका गान ?

जिन्हें जग-जीवन से वैराग्य,

उन्हें क्यों भाए इसकी तान !

हमें जग-जीवन से अनुराग,

हमें जग-जीवन से विद्रोह !

इसे क्या समझेंगे वे लोग,

जिन्हें सीमा-बंधन का मोह ।

करे कोई निंदा दिन रात,

सुयश का पीटे कोई ढोल,

किए कानों को अपने बंद

रही बुलबुल डालों पर बोल !

पाटल-माल

मधुप-दल का करती आह्वान
रही खिल वन में पाटल-माल !

(१)

वही वन के, उपवन के बीच
मचलती मादक मलय बयार,
हरित पल्लव-अधरों को खोल
हँसी ये डालें काँटेदार ।

सरल वह बालपने का हास
न रहने पाया था कुछ रोज
कि ले नवयौवन का संवाद
कली-से उभरे अमित उरोज !

भले जगती अपना उन्माद
छिपा रक्खे ढक, मूँद, सँभाल,
मधुप-दल का करती आह्वान
रही खिल वन में पाटल-माल !

(२)

नम्र तृण, तरु, पल्लव, खग-वृन्द
नम्र है श्यामल-तन अकाश,
नम्र रवि, शशि, तारक, नीहार,
नम्र बादल, विद्युत, वातास,

जलाधि के आँगन में अविराम
ऊर्मियाँ नर्तन करतीं नम्र,
सरोवर, नद निर्भर, गिरि, शृंग,
नम्र रहकर ही रहते मम्र !

भली मानवता ही क्यों आज
रही अपने पर परदा डाल ?
यही करती जगती से प्रश्न,
रही खिल वन में पाटल-माल !

(३)

किसी युग में मानव की आँख
सकी स्वर्गिक सुषमा को तोल,
सकी दे उसका वाञ्छित मूल्य,
खुशी से उरकी गाँठें खोल;

आज कहलाता है अश्लील
हृदय का अनियंत्रित उद्गार,

विकृत जीवन को ही जग आज
समझ बैठा है लोकाचार !

प्रगतिमय यौवन का पट थाम
न बैठो जग के कंटक-जाल !
यही कहती कांटों से आज
रही खिल वन में पाटल माल !

(४)

पुण्य की है जिसको पहचान,
उसे ही पापों का अनुमान,
सदाचारों से जो अनभिज्ञ,
दुराचारों से वह अज्ञान;

उसी के लज्जा से नत नेत्र,
जिसे गौरव का प्रतिपल ध्यान,
जगत के जीवन से अब, हाय,
गया उठ भोलेपन का मान !

लगा मत उस भोली को दोष,
न उसपर आँखें लाल निकाल,
स्वयं निज सौरभ से अनजान
रही खिल वन में पाटल-माल !

(५)

करे मृदु पंखुरियों को कैद
कुटिल काँटों का कारागार,
बहाएँ बेचारी प्रति प्रात
मोतियों-से आँसू की धार,

सरसता की प्रतिमा प्रत्यक्ष
पड़ें जा पाषाणों के हाथ,
चला ज्ञानी देने उपदेश,
न्याय होता है सबके साथ !

समझ लें आँखोंवाले खूब,
नियति की कैसी टेढ़ी चाल;
रँगी अपने लोहू से आज
रही खिल वन में पाटल-माल !

(६)

नयन में पा आँसू की बूँद,
अधर के ऊपर पा मुस्कान,
कहीं मत इसको, हे संसार !
दुखों का अभिनय लेना मान ।

नयन से नीरव जल की धार
ज्वलित उर का प्रायः उपहार,

हँसी से ही होता है व्यक्त
कभी पीड़ित उर का उद्गार !

तप्त आँसू से भुलसे गाल
किए कोई मदिरा से लाल !
इसी का तो करती संकेत
रही खिल वन में पाटल-माल !

(७)

गगन के आँगन में विस्तीर्ण
खिला कोई पाटल का फूल,
उसी पर तारक हिम-कण रूप,
नहीं उसकी डालों में शूल;

पंखुरी एक उसी की नित्य
प्रात में गिर पड़ती अनजान,
पूर्व से रंजित होकर और
उषा का बन जाती परिधान !

गिरे दल इसके हो जड़-म्लान !
बड़ा रे इसका रंज-मलाल ।
विवशता की, पर, ले-ले साँस
रही खिल वन में पाटल-माल !

(८)

हृदय के अंदर वह उन्माद
कि जिससे पागल हो संसार
खोल दे, कर-पद-बंधन काट,
विश्व-बंदी-गृह के सब द्वार !

हृदय के अंदर वह विद्रोह
कि जाए इंद्रासन भी डोल,
हुई बस इतने से लाचार,
नहीं मुँह सकती अपना खोल !

दबा मन का सब क्रोध-विरोध
गई बुलबुल वाचाल निकाल,
मथित उर थामे अपना, हाय,
रही खिल वन में पाटल-माल !

इस पार—उस पार

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा !

यह चाँद उदित होकर नभ में

कुछ ताप मिटाता जीवन का,

लहरा-लहरा यह शाखाएँ

कुछ शोक भुला देतीं मन का,

कल मुझानेवाली कलियाँ

हँसकर कहती हैं मग्न रहो,

बुलबुल तरु की फुनगी पर से

संदेश सुनाती यौवन का,

तुम देकर मदिरा के प्याले

मेरा मन बहला देती हो,

उस पार मुझे बहलाने का

उपचार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा !

मधुबाला

जग में रस की नदियाँ बहतीं,
रसना दो बूँदें पाती है !
जीवन की झिलमिल-सी झाँकी
नयनों के आगे आती है !

स्वर-ताल-मयी वीणा बजती,
मिलती है बस झंकार मुझे !

मेरे सुमनों की गंध कहीं
बह वायु उड़ा ले जाती है !

ऐसा सुनता, उसपार, प्रिये,
ये साधन भी छिन जाएँगे;
तब मानव की चेतनता का
आधार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

प्याला है, पर पी पाएँगे,
है श्रात नहीं इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है
असमर्थ बना कितना हमको !

कहनेवाले, पर, कहते हैं,
हम कर्मों में स्वाधीन सदा,

करने वालों की परवशता
है शात किसे, जितनी हमको !

कह तो सकते हैं, कहकर ही
कुछ दिल हल्का कर लेते हैं;
उस पार अभागे मानव का
अधिकार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

कुछ भी न किया था जब उसका
उसने पथ में काँटे बोए,
वे भार दिए धर कंधों पर,
जो रो-रोकर हमने ढोए,

महलों के स्वप्नों के भीतर
जर्जर गैडहर का सत्य भरा !

उर में ऐसी हलचल भर दी,
दो रात न हम सुख से सोए !

अब तो हम अपने जीवन भर
उस क्रूर-कठिन को कोस चुके,
उस पार नियति का मानव से
व्यवहार न जाने क्या होगा !

मधुबाला

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो.

उस पार न जाने क्या होगा !

संस्कृति के जीवन में, सुभगे !

ऐसी भी बढ़ियाँ आएँगी.

जब दिनकर की तमहर किरणें

तम के अंदर छिप जाएँगी,

जब निज प्रियतम का शव रजनी

तम की चादर से ढक देगी,

तब रवि-शशि-पोषित यह पृथ्वी

कितने दिन खैर मनाएगी !

जब इस लंबे-चौड़े जग का

अस्तित्व न रहने पाएगा,

तब तेरा-मेरा नन्हीं-सा

संसार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा !

ऐसा चिर पतझड़ आएगा;

कोयल न कुहुक फिर पाएगी,

बुलबुल न अंधेरे में गा-गा

जीवन की ज्योति जगाएगी,

इस पार—उस पार

अगणित मृदु-नव पल्लव के स्वर

मरमर न सुने फिर जाएँगे,

अलि-अवली कलि-दल पर गुंजन

करने के हेतु न आएगी;

जब इतनी रसमय ध्वनियों का

अवसान, प्रिये, हो जाएगा,

तब शुष्क हमारे कंठों का

उद्गार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा !

सुन काल प्रबल का गुरु गर्जन

निर्भरिणी भूलेगी नर्तन,

निर्भर भूलेगा निज 'टलमल',

सरिता, अपना 'कलकल' गायन,

वह गायक-नायक सिंधु कहीं

चुप हो छिप जाना चाहेगा !

मुँह खोल खड़े रह जाएँगे

गंधर्व, अप्सरा, क्रिन्नर गण !

संगीत सजीव हुआ जिनमें,

जब मौन वही हो जाएँगे,

मधुबाला

तब, प्राण, तुम्हारी तंत्री का
जड़ तार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

उतरे इन श्रौखों के आगे
जो हार चमेली ने पहने,
वह छीन रहा, देखो, माली ✓
सुकुमार लताओं के गहने,

दो दिन में खींची जाएगी
ऊषा का साड़ी सिदूरी !

पट इंद्रधनुष का सतरंगा
पाएगा कितने दिन रहने !

जब मूर्तिमती सत्ताओं की
शोभा-सुषमा लुट जाएगी,
तब कवि के कल्पित स्वप्नों का
शृंगार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

हग देख जहाँ-तक पाते हैं,
तम का सागर लहराता है,

इस पार—उस पार

फिर भी उस पार खड़ा कोई

हम सब को खींच बुलाता है !

मैं आज चला, तुम आओगी

कल; परसों, सब संगी-साथी ।

दुनिया रोती-धोती रहती,

जिसको जाना है. जाता है ।

मेरा तो होता मन डगमग

तट पर के ही हलकोरों से !

जब मैं एकाकी पहुँचूँगा

मँझधार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा !

पाँच पुकार

गूँजी मदिरालय भर में
लो, 'पियों, पियों' की बोली !

(१)

संकेत किया यह किसने ?

यह किसकी भौंहे घूमी ?

सहसा मधुबालाओं ने

मद-भरी सुराही चूमी;

फिर चलीं इन्हें सब लेकर,

होकर प्रतिबिंबित इनमें,

चेतन का कहना ही क्या.

जड़ दीवारें भी झूमीं;

ज्योंही सबने कलि-मुख की

मृदु अधर-पखुरियाँ खोलीं !

गूँजी मदिरालय भर में,

लो, 'पियो, पियो' की बोली !

(२)

जिस अमृतमय वाणी से
जड़ में जीवन जग जाता,
रुकता सुनकर वह कैम
रसिकों का दल मदमाता;

आँखों के आगे पाकर
अपने जीवन का सपना,
हर एक उसे छूने को
आया निज कर फैलाता;

पा सत्य कलोल उठी कर
मधु के प्यासों की टोली,
गूँजी मदिरालय भर में
लो, 'बढ़ो बढ़ो' की बोली !

(३)

सारी साधें जीवन की
अधरों में आज समाई,
सुख - शांति जगत की सारी
छुनकर मदिरा में आई,

इच्छित स्वर्गों की प्रतिमा
साकार हुई, सखि, तुम हो;

मधुबाला

अब ध्येय विसुधि-विस्मृति है.

है मुक्ति यही सुखदाई,

पल-भर की चेतनता भी

अब सद्य नहीं, ओ भोली !

गूँजी मदिरालय भर में

लां, 'भरो, भरो' की बोली !

(४)

मधुघट कंधों से उतरे.

आशा से आँखें चमकीं,

छल-छल कर माणिक-मदिरा

प्यालों के अंदर दमकी,

दानी मधुबालाआ न

ली भुका सुराही अपनी,

'आरंभ करो' कहती-सी

मधुगंध चतुर्दिक गमकी,

आशीष-वचन कहने को

मधुपों की जिह्वा डोली,

गूँजी मदिरालय भर में

लां, 'जियो, जियो' की बोली !

(५)

दो दौर न चल पाए थे
इस तृष्णा के आंगन में,
झुबा मदिरालय सारा
मतवालों के क्रंदन में !

यमदूत द्वार पर आया
ले चलने का परवाना !
गिर-गिर टूटे घट-प्याले
बुझ दीप गए सब क्षण में !

सब चले किए सिर नीचे
ले अरमानों की झोली ।
गूँजी मदिरालय भर में
लो 'चलो, चलो' की बोली !

पग-ध्वनि

(१)

पहचानी वह पग-ध्वनि मेरी,
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
नंदनवन में उगनेवाली
मेहदी जिन तलवों की लाली
बनकर भू पर आई, आली !
मैं उन तलवों से चिर-परिचित,
मैं उन तलवों का चिर-शानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(२)

ऊषा ले अपनी अरुणाई,
ले कर-किरणों की चतुराई,
जिनमें जावक रचने आई,
मैं उन चरणों का चिर-प्रेमी,
मैं उन चरणों का चिर-ध्यानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(३)

उन मृदु चरणों का चुंबनकर
ऊसर भी हो उठता उर्वर,
तृण-कलि-कुसुमों से जाता भर.
मरुथल मधुवन बन लहराते,
पाषाण पिघल होते पानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(४)

उन चरणों की मंजुल उँगली
पर नख-नक्षत्रों की अवली,
जीवन के पथ की ज्योति भली
जिसका अवलंबन कर जग ने
सुख-सुषमा की नगरी जानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(५)

उन पद-पद्मों के प्रभ रजकण
का अंजित कर मंत्रित अंजन
खुलते कवि के चिर-अंध नयन !

तम से आकर उर से मिलती
स्वप्नों की दुनिया की रानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(६)

उन सुंदर चरणों का अर्चन
करते आँसू से सिधु-नयन !
पग-रेखा में उच्छ्वास पवन

देखा करता अंकित अपनी
सौभाग्य सुरेखा कल्याणी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(७)

उन चल चरणों की कल छम-छम
से ही था निकला नाद प्रथम,
गति से, मादक तालों का क्रम,

संगीत जिसे सारे जग ने
अपने सुख की भाषा मानी ।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(८)

हो शांत, जगत के कोलाहल !
 रुक जा, री जीवन की हलचल !
 मैं दूर पड़ा सुन लूँ दो पल,
 संदेश नया जो लाई है,
 यह चाल किसीकी मस्तानी !
 वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(९)

किसके तमपूर्ण प्रहर भागे ?
 किसके चिर-सोए दिन जागे ?
 सुख-स्वर्ग हुआ किसके आगे ?
 होगी किसके कंपित कर से
 इन शुभ चरणों की अगवानी ?
 वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(१०)

बढ़ता जाता घुंघरू का रव;
 क्या यह भी हो सकता संभव ?
 यह जीवन का अनुभव अभिनव ।
 पद-चाप शीघ्र, पग-राग तीव्र !
 स्वागत को उठ, रे कवि मानी ।
 वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

मधुबाला

(११)

ध्वनि पास चली मेरे आती,
सब अंग शिथिल पुलकित छाती,
लो. गिरती पलकें मदमाती,

पग को परिभ्रमण करने की,
पर, इन भुज-पाशों ने ठानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(१२)

ख गूँजा भू पर, अंबर में,
सर में, सरिता में, सागर में,
प्रत्येक श्वास में, प्रति स्वर में,

किस-किसका आश्रय ले फैलें,
मेरे हाथों की हैरानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(१३)

ये ढूँढ़ रहे ध्वनि का उद्गम,
मंजीर-मुखर-युत पद निर्मम,
है ठौर सभी जिनकी ध्वनि सम,

इनको पाने का यत्न वृथा,
श्रम करना केवल नादानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

(१४)

ये कर नभ-जल-थल में भटके,
आकर मेरे उर पर अटके,
जो पग द्वय थे अंदर घटके,

ये टूँट रहे उनको बाहर
ये युग कर मेरे अज्ञानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी

(१५)

उर के ही मधुर अभाव चरण
बन करते स्मृति-पट पर नर्तन,
मुखरित होता रहता बन-बन

मैं ही इन चरणों में नूपुर
नूपुर-ध्वनि मेरी ही वाणी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !

आत्म-परिचय

मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ ,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ;
कर दिया किसीने भङ्कृत जिनको छूकर,
मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ !

मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ;
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ !

आत्म-परिचय

मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ;
है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता,
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ !

मैं जला हृदय में अग्नि दहा करता हूँ,
सुख-दुख दोनों में मग्न रहा करता हूँ;
जग भव-सागर तरने ने नाव बनाए,
मैं मन मौजों पर मस्त बहा करता हूँ !

मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ,
उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूँ;
जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूँ,

कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना !
नादान वहीं है. हाय, जहाँ पर दाना !
फिर मूढ़ न क्या जग, जो इस पर भी सीखे,
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना !

मैं और, और, जग और, कहाँ का नाता !
मैं बना-बना कितने जग रोज मिटाता !

मधुबाला

जग जिस पृथ्वी पर वैभव जोड़ा करता,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता !

मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूँ;
हों जिसपर भूषों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खँडहर का भाग लिए फिरता हूँ !

मैं रोया इसको तुम कहते हो गाना !
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना !
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना ।

मैं दीवानों का वेष लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता निःशेष लिए फिरता हूँ;
जिसको सुनकर जग भूम, भुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ !

**बच्चन की
अन्य प्रकाशित रचनाओं का
विवरण**

सुषमा निकुंज, इलाहाबाद

बच्चन की नवीनतम रचना !

एकांत संगीत

यह कवि की १९३८-३९ में लिखित एक सौ गीतों का संग्रह है। देखने में यह गीत 'निशा निमंत्रण' के गीतों की शैली के प्रतीत होते हैं, परंतु पद, पंक्ति, तुक, मात्रा आदि में अनेक स्थानों पर स्वतंत्रता लेकर कवि ने इनकी एकरूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव निशा निमंत्रण में मुखरित किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' भी साथ में नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई है कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। गीतों का क्रम रचना क्रम के अनुसार होने से कवि की भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा और किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकांत में क्या देखा, क्या अनुभव किया, क्या सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकांत संगीत को लेकर एकांत में बैठ जाइए।

पृष्ठ संख्या १२८, सजिल्द १। अजिल्द १)

सुषमा निकुंज, इलाहाबाद

दूसरा संस्करण चल रहा है ।

निशा निमंत्रण

यह कवि की १९३७-३८ में लिखित एक सौ गीतों का संग्रह है । 'निशा निमंत्रण' के गीतों से बच्चन की कविता का एक नया युग आरंभ होता है । १३-१३ पंक्तियों में लिखे गए ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी संपूर्णता में अंग्रेजी के सानेट्स की समता करते हैं ।

'निशा निमंत्रण' के गीत सायंकाल से आरंभ होकर प्रातः काल समाप्त होते हैं । रात्रि के अंधकार पूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रंजित कर बच्चन ने गीतों की जो शृंखला तैयार की है वह आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है । बच्चन ने प्रकृति के जिस दृश्य के साथ जिस वेदना का गठ बंधन कर दिया है वह आपको चिर काल तक स्मरण रहेगी ।

रात की काले पृष्ठों वाली पुस्तक में बच्चन की आँखों ने क्या-क्या पढ़ा है । इसे देखना हो तो 'निशा निमंत्रण' पढ़िए ।

पृष्ठ संख्या १२८, सजिल्द १॥ अजिल्द १॥

सुषमा नेकुंज, इलाहाबाद

दूसरा संस्करण चल रहा है

मधु कलश

यह 'निशा निमंत्रण' के पूर्व लिखित 'मधु कलश', 'कवि की वासना', 'सुषमा' 'काव की निराशा', 'री हरियाली', 'कवि का गीत', 'पथभ्रष्ट', 'कवि का उपहास', 'माँभी', 'लहरों का निमंत्रण' और 'मेघदूत के प्रति' शीर्षक कविताओं का संग्रह है ।

देखिए एक संमति

.. यह बताने की जरूरत नहीं कि कवि हिंदी में एक नवीन धारा के प्रवर्तक हैं और यद्यपि उमर खैयाम से कवि प्रभावित अवश्य हुए हैं पर उनकी अपनी विशेषता भी है और उनका अपना रंग भी है, जो एक दम निराला है । बच्चन जी की कविताएँ पढ़ते समय हमें इस बात की प्रसन्नता होती है कि हिंदी का यह कवि मानवता का गीत गाता है और अपनी मूल्यवान मस्ती में बेधड़क उन सत्यों को कहने का साहस दिखलाता है, जिन्हें छूने का साहस कितने ही कलाकार नहीं कर सकते, यद्यपि वे कुछ ऐसे सत्य हैं, जो उच्च कोटि के किसी भी कलाकार के लिए अत्यंत आवश्यक हैं और हम ऊपर यह जो कुछ कह रहे हैं 'मधुकलश' की कविताएँ उसका साक्ष्य हैं ।

—विश्वमित्र, नवंबर, '३७

पृष्ठ संख्या १२०, मूल्य, सजिल्द १।) अजिल्द १।)

शीघ्र अपनी प्रति मँगाइए ।

सुषमा निकुंज, इलाहाबाद

चौथा संस्करण चल रहा है

मधुशाला

[मधुशाला पर लिखित रुबाइयों का संग्रह]

मधुशाला में १३५ रुबाइयाँ हैं। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुँह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली कविता की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी, इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।

देखिए दो संमतियाँ

हंस—हिंदी में मधुशाला बिल्कुल नई चीज़ है। यह श्रेय बच्चन ही को है कि उन्होंने हिंदी कविता में मधुशाला भी सजा दी।

विश्वमित्र—‘मधुशाला’ सचमुच ही हिंदी में अपने ढंग की एक ही किताब है।

अपनी प्रति शीघ्र ही मंगा लीजिए।

पृ० सं० १००—सजिल्द १।) अजिल्द १।)

सुषमा-निकुज, इलाहाबाद

दूसरा संस्करण छप रहा है खैयाम की मधुशाला

बचन लिखित भूमिका, टिप्पणी, मूल अंग्रेज़ी दूसरे संस्करण की विशेषताएँ हैं ।

मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । इसकी गणना संसार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में है । अनुवाद में प्रायः मूल का आनंद नहीं आता, परन्तु बचन के अनुवाद में कहीं भी आपको यह कमी न दीख पड़ेगी ! वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े । उन्होंने उमर खैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है । इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का-सा आनंद देती है ।

देखिए दो संमतियाँ

बचन ने उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया ; उसी रंग में ब्रूब गए हैं' प्रेमचंद—हंस (जनवरी, '३६)

'Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know, very much like the poet astronomer of Nishapur'
—LEADER.

६४ संख्या १२८, मूल्य सजिल्द १।) अजिल्द १।)

शीघ्र अपनी प्रति मँगाइए

सुषमा-निकुंज, इलाहाबाद

दूसरा संस्करण चल रहा है

तेरा हार

[बचन की प्रारंभिक कविताओं का प्रथम संग्रह]

यद्यपि यह बचन की सर्व प्रथम कृति है, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी प्रशंसा की है। बचन की कविताओं का क्रम विकास समझने के लिए इसे देखना बहुत आवश्यक है।

देखिए कुछ संमतियाँ

विश्वमित्र—इसके रचयिता महोदय का नाम यद्यपि हम हिंदी में प्रथम बार देख रहे हैं तथापि कविताएँ पढ़ने से मालूम होता है कि वे इस कला में सिद्ध-हस्त हैं। कविताएँ सुंदर और सरस हैं और भाव भी यथेष्ट परिपक्व हैं।

वीणा—प्रत्येक कविता-रसिक पाठक से हम अनुरोध करेंगे कि वह बचन की इस सुंदर कृति का अवलोकन अवश्य करें।

प्रताप—कविता प्रेमियों को इसका आदर करना चाहिए।

अपनी प्रति शीघ्र मँगा लीजिए।

मूल्य १)

सुपमा निकुंज, इलाहाबाद

